दैवी सम्पदा एवं आसुरी सम्पदा

शोध पत्र-संस्कृत

* सीमा चौधरी

सेनयोरुभयोर्मध्य एवं स्थापय मेऽच्युत।[1]

दोनों सेनाओं के मध्य में मेरे रथ को खड़ा कर दो। एक कर्त्तव्य परायण क्षत्रिय और सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर, परमवीर योद्धा अर्जुन यह कह कर उसी क्षण विषाद के इतने गहरे रंग में डूब जाता है कि उसे युद्ध का परिणाम उस युद्ध से भी कहीं अधिक भयंकर लगने लगा। उसे धर्म में अधर्म, श्रेय में अश्रेय, कर्त्तव्य में अकर्त्तव्य और अर्थ में अनर्थ के दर्शन होने लगे। शंख और भेटियों के भीषण रव से गुञ्जायमान सुविशाल युद्ध स्थल में विषादग्रस्त और मोहग्रस्त अर्जुन को भगवान द्वारा दिये गये उपदेशों का लिपिबद्ध स्वरूप श्रीमद् भगवद् गीता है। सृष्टि स्थिति और प्रलय, परमात्मा, जीवात्मा, आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति के उपाय और साधनों का विवेचन अन्य दार्शनिक ग्रन्थों में भी उपलब्ध है[2] किन्तु गीता इन सब गूढ दार्शनिक प्रश्नों के उत्तर कितनी सरलता से और सफलता से देती है। इसका सहज अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि गीताप्रेस से 1300 संस्करणों में 1390,000 प्रतियाँ 8 विदेशी भाषाओं सहित 32 विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं।

गीता के तत्त्वविवेचन के वैशिष्ट्य को निम्न प्रकार से अभिव्यक्त किया गया है :-

"The manner in which the Gita describes the vietues, gpey and secrets of god, is hardly found in any other scripture, for in other books the teachings are generally mixed up, more or less, with weldly subtects, but the Gita uttered by the lord is such an incomparable book that not a word will be found in it which in devoid of some spiritual import."[3] (J.D. Goyandka).

आधुनिक युग में मानव सर्वात्मना समर्पित होकर भौतिक सुखप्राप्ति के लिए कृतसंकल्प है। उसे भौतिक सुख, सम्पत्ति और सम्मान प्राप्त करने के लिए जो भी करना पड़े, वह करने को तैयार है। काम, लोभ और क्रोध भगवत्प्राप्ति में सबसे बड़े बाधक हैं। काम अर्थात् मुझे अमुक वस्तु प्राप्त हो जावे, लोभ मुझे अमुक प्राप्त वस्तु और अधिक मात्रा में मिले, जब अभीष्ट प्राप्ति में बाधा आने पर क्रोध उत्पन्न होता है :-

ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात् संजायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद् भवति संमोहः संमोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रनश्यति॥[5]

आज समाज में व्याप्त कदाचार, भ्रष्टाचार, व्याभिचार और अन्य जघन्यकृत्यों के कारण का कितना स्पष्ट विवेचन है। हम आसुरी सम्पदा सम्पन्न होते जा रहे हैं। जब मानव केवल भौतिक सम्पत्ति की ही कामना करता है तो उसमें आसक्ति हो जाती है। आसक्ति से काम, काम से क्रोध, क्रोध से संमूढ़ता और मूढ़ता से स्मृतिभ्रम होता है। स्मृति नाश से बुद्धि का विनाश हो जाता है और बुद्धि नाश से सर्वस्व नाश हो जाता है। वर्तमान समाज में पतन का प्रमुख कारण आसुरी सम्पदा में अनुरक्ति और दैवी सम्पदा से विरक्ति है। दैवी सम्पदा से मोक्ष प्राप्त होता है, सुख, शान्ति और श्रेष्ठता प्राप्त होती है। आसुरी सम्पदा बन्धन के लिए है :-

'दैवी सम्पद् विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता॥''[6]

यहाँ 'दैव' शब्द देवता वाचक नहीं 'परमात्मा' वाचक है। जिस प्रकार संसार के धन से सांसारिक वस्तुऐं प्राप्त होती हैं उसी प्रकार दैवी सम्पत्ति से परमात्मा प्राप्त होता है। दैवी सम्पत्ति से सम्पन्न मानव का लक्षण करते हुऐ श्रीकृष्ण कहते हैं :-

दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिर- -पैशुनम्।[7]
तेजः क्षमा धृतिः शोचमद्रोहानाति मानिता
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत॥[8]

सत्त्व सम्पन्नता, दान, यज्ञ, संयम, अहिंसा, सत्य और अक्रोधादि दैवी सम्पत्ति है। शास्त्र विरूद्ध आचरण में लज्जा, अद्रोह और अलोभ दैवी सम्पत् हे। इसी क्रम में आसुरी सम्पत्ति का विवेचन करते हुए करते हैं :-

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदासुरी।
न शोचं नापि नाचारो न सत्यं तेषु विद्यते॥[9]

दम्भ, घमण्ड और अभिमान, क्रोध, कठोरता और अज्ञान, बाहर भीतर की अशुद्धि, न श्रेष्ठ भाषण, असत्य और अनाचार ये सब आसुरी सम्पत्ति सम्पन्नता के लक्षण हैं। आसुरी सम्पत्ति से सम्पन्न व्यक्ति सैकड़ों आशाओं की फाँसियों से बँधे हुए काम, क्रोध, परायण होकर विषय भोगों के लिए अन्यायपूर्वक धनादि पदार्थों का संग्रह करते हैं :-

आशा पाश शतैर्बद्धा काम क्रोध परायणाः।
ईहन्ते काम भोगार्थमन्यायेनार्थ सञ्चयान्॥[10]

भगवान का यह उपदेश है कि हमें आसुरी सम्पत्ति से सम्पन्न होने के लिए प्रयासरत एवं उन्हीं में परायण नहीं होना चाहिए क्योंकि ये सब सम्पदायें मानव को केवल दुःखों के अनन्त अन्धकार

*प्रवक्ता संस्कृत, बा. भगवानदास राज. महाविद्यालय, चिमनपुरा, शाहपुरा, टीचर रिसर्च फैलो., संस्कृत विभाग, राज. विश्वविद्यालय, जयपुर

में धकेल देती हैं। समाज में दुराचार, अशान्ति और अत्याचार को जन्म देती हैं। वही मनुष्य सबसे अधिक दरिद्र है जो विशाल तृष्णा वाला है :-

''को वा दरिद्रो हि विशाल तृष्णः।''[11]

(शंकराचार्य) अतः मानव को त्याग, अहिंसा, संयम और दानादि दैवी सम्पदाओं को अर्जित कर परमात्मतत्त्व प्राप्ति हेतु प्रयत्न करना चाहिए। ये स्थायी सम्पत्ति हैं जो मानव को आत्मशान्ति प्रदान करती हैं। मनुष्य स्वयं ही अपना उद्धार करे और अपने आपको अवनति के गर्त में गिरने से रोकें :-

''उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्।''[12]

आज मानव आत्म उद्धार के लिये प्रयत्न न कर स्वयं ही अपने प्रति शत्रुता कर रहा है। आज जिसको सम्मान प्राप्त है, वह और सम्मान पाने हेतु लालायित है, जो धनी है वह भी और धन पाने की तलाश कर रहा है। ग्रन्थकार मृत्यु के बाद चिरस्थायी कीर्ति की आशा में डूबा है तो धर्मोपदेष्टा अपनी प्रसिद्धि का वातावरण बनाने में संलग्न है। वह अपने ध्येय के विपरीत दिशा में भाग रहा है। मानव जीवन का ध्येय परम तत्त्व की प्राप्ति है। भौतिक सुख प्राप्ति हेतु दौड़ कर ईश्वर द्वारा प्रदत्त अमूल्य ऊर्जा एवं प्रतिभा को नष्ट नहीं करना चाहिये। सुख-दुःख, लाभ-हानि में सम रहकर दूसरों के अभाव की पूर्ति करे, एक दूसरे को सुख पहुँचाये तथा एक दूसरे का हित करे। फिर दैवी सम्पदायें अनायास ही प्राप्त हो जायेगी। श्रीमद्भगवद्गीता की शिक्षा इस सन्दर्भ में पर्याप्त सटीक लगती हैः-

''परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथः।''[13]

अर्थात् एक दूसरे को उन्नत करते हुये तुम लोग परम कल्याण को प्राप्त होओगे। मैं सुख पा लूँ, मेरा ही आदर हो, दूसरे मेरी सेवा करें ऐसी भावनायें ही पतन का मार्ग प्रशस्त करती हैं। यद्यपि गीता के गम्भीर श्लोकों की व्याख्या असंभव है, तथापि दैवी एवं आसुरी सम्पदा के सिद्धान्त प्रचार समाज राष्ट्र एवं विश्व में बढ़ते अपराधों तथा दुःखों पर अंकुश लगा सकता है। इस लक्ष्य में हमें सतत् सन्नद्ध होना चाहिये। गीता के इस गंभीर आशय को संबंध में मान्य जयदयाल गोयन्दका ने निम्न प्रकार विचार स्पष्ट किये हैं :-

"Truely speaking, nonehas power to describe in words, the glory of the gita, for its a book containing the highest esotric doctrines. It is the persence of the nedas, its thoughts are so deep that none com arrive at their end even after constant study of through out a life time."[14]

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. श्रीमद्भगवद्गीता, 1/21
2. दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपधातके हेतौ., सांख्यकारिका-1
3. Sri Madbhagandgita, Prefece, page 3
4. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/62
5. श्रीमद्भगवद्गीता, 2/63
6. श्रीमद्भगवद्गीता, 16/5
7. श्रीमद्भगवद्गीता, 16/2,3
8. श्रीमद्भगवद्गीता, 16/4, 7
9. श्रीमद्भगवद्गीता, 16/8
10. श्रीमद्भगवद्गीता, 16/12
11. वृत्तिलहरी, 33
12. सूक्तिसंग्रहः, पृ. 216
13. श्रीमद्भागवद्गीता, 3/11
14. Sri Madbhagandgita, Prefece, page 9